चौबीस तीर्थंकर विधान

रचयिता :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी., डी.-लिट्

श्रीमान् नीरज एवं गरिमा जैन न्यूजर्सी, यू.एस.ए.

की ओर से प्रस्तुत प्रकाशन का सम्पूर्ण

व्ययभार वहन किया गया है; एतदर्थ आभार।

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : 0141-2707458, 2705581

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : 05 हजार प्रतियाँ
(15 अगस्त 2018)
स्वतंत्रता दिवस

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1.	श्रीमती श्री कान्ताबाई पूनमचन्द छाबड़ा, इन्दौर	2500.00
2.	श्री शान्तिलालजी वैद, मन्दसौर	2001.00
3.	श्रीमती गीताबाई ध.प. कन्हैयालालजी जैन, कुचड़ौद	2000.00
4.	श्रीमती शांताबेन विमलचन्दजी जैन, मन्दसौर	2000.00
5.	श्रीमती पुष्पलता जैन (जीजीबाई) ध.प. अजितकुमारजी जैन, छिन्दवाड़ा	1100.00
6.	स्व. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	1100.00

कुल राशि 10701.00

मूल्य : **5 रुपए**

अनुक्रमणिका

1.	विनय पाठ	5
2.	देव-शास्त्र-गुरु पूजन	12
3.	मंगलाचरण	16
4.	चौबीस तीर्थंकर पूजन	18
5.	चौबीस तीर्थंकर अर्घ्यावली	21
6.	महार्घ्य	30
7.	शान्तिपाठ	31

मुद्रक :
रैनवो ऑफसेट प्रिंटर्स
बाईस गोदाम, जयपुर

प्रकाशकीय

समयसार महामण्डल विधान, प्रवचनसार महामण्डल विधान, नियमसार महामण्डल विधान के पश्चात् डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान का लेखन प्रारंभ कर दिया है और दर्शनपाहुड़, सूत्रपाहुड़ व चारित्रपाहुड़ - ये तीन पूर्ण हो चुके हैं और इनका पृथक् से प्रकाशन भी हो गया है। शेष पाँच पाहुड़ों पर भी शीघ्र ही लिखना पूर्ण होकर अष्टपाहुड़ महामण्डल विधान आपके हाथों में होगा।

अब यह चौबीस तीर्थंकर विधान भी आपके हाथों में प्रस्तुत है। चौबीस तीर्थंकर पूजन के साथ इसमें जिनेन्द्र वंदना के छन्दों को अर्घ्यावली के रूप में दिया गया है। आरम्भ में देव-शास्त्र-गुरु पूजन दी गई है।

पूजन के आरंभ में होने वाले विनयपाठ, स्वस्ति विधान आदि को नये रूप में हिन्दी पद्य में प्रस्तुत किया गया है। अन्त में महाऽर्घ्य, शान्तिपाठ एवं विसर्जन को भी नये रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इन सबको जैन तत्त्वज्ञान के अनुसार प्रस्तुत करना मुख्य उद्देश्य रहा है।

जैनदर्शन अकर्त्तावादी दर्शन है। जिनेन्द्र भगवान तो जीवन-मरण और सुख-दुःख के दाता हैं ही नहीं; अन्य कोई भी किसी का जीवन-मरण और भला-बुरा नहीं कर सकता। जगत के सुनिश्चित परिणमन में भी किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप संभव नहीं है।

एतदर्थ डॉ. भारिल्लजी से निवेदन किया कि पूर्व के विनय पाठादि में कर्तृत्व-पोषक व अन्य जैन मान्यताओं के विरुद्ध बातें आयी हुई हैं, उन्हें छोड़ते हुए नये आदर्श स्वरूप में आप स्वयं इन्हें लिखें। अतः उन्होंने इन सबकी रचना अल्प समय में कर दी है। इसप्रकार यह सम्पूर्ण विधान विनय पाठ से लेकर विसर्जन तक डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा रचित ही है।

पूर्व विधानों की तरह इसमें भी पण्डित शान्तिकुमार पाटील का सहयोग रहा है, सुन्दर टाईप सैटिंग के लिए श्री कैलाशचन्द्र शर्मा और आकर्षक मुखपृष्ठ व शीघ्र प्रकाशन के लिए श्री अखिल बंसल का सराहनीय योगदान रहा है; अतः हम इन तीनों के आभारी हैं।

चौबीस तीर्थंकरों की पूजन से उनके प्रति यथार्थ भक्तिभाव के साथ-साथ तत्त्वज्ञान का भी लाभ हम लें - इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

- ब्र. यशपाल जैन
प्रकाशन मंत्री

डॉ. भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. समयसार : ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका	५०.००	५१. आचार्य कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम	५.००
२-६. समयसार अनुशीलन भाग १ से ५	१२५.००	५२. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
७. समयसार का सार	३०.००	५३. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	२०.००
८. गाथा समयसार	१०.००	५४. योगसार अनुशीलन	२५.००
९. प्रवचनसार : ज्ञानज्ञेयतत्त्वप्रबोधिनी टीका	५०.००	५५. मैं कौन हूँ	११.००
१०-१२. प्रवचनसार अनुशीलन भाग १ से ३	९५.००	५६. रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का	१०.००
१३. कुन्दकुन्द शतक अनुशीलन	२०.००	५७. निमित्तोपादान	७.००
१४. प्रवचनसार का सार	३०.००	५८. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	५.००
१५. नियमसार : आत्मप्रबोधिनी टीका	५०.००	५९. मैं स्वयं भगवान हूँ	५.००
१६-१७. नियमसार अनुशीलन भाग १ से ३	७०.००	६०-६१. ध्यान का स्वरूप/रीति-नीति	४.००
१८. छहढाला का सार	१५.००	६२. शाकाहार	५.००
१९. मोक्षमार्गप्रकाशक का सार	३०.००	६३. भगवान ऋषभदेव	४.००
२०. वैराग्य महाकाव्य	२५.००	६४. तीर्थंकर भगवान महावीर	३.००
२१. समयसार महामण्डल विधान	२५.००	६५. चैतन्य चमत्कार	४.००
२२. समयसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३५.००	६६. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
२३. प्रवचनसार महामण्डल विधान	२०.००	६७. गोम्मटेश्वर बाहुबली	२.००
२४. प्रवचनसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	२०.००	६८. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	२.००
२५. नियमसार महामण्डल विधान	२५.००	६९. अनेकान्त और स्याद्वाद	३.००
२६. नियमसार महामण्डल विधान (गाथा सहित)	३०.००	७०. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर	६.००
२७.दर्शन-सूत्र-चारित्रपाहुड़ मण्डल विधान	१०.००	७१. बिन्दु में सिन्धु	२.५०
२८. बढ़ते कदम	१०.००	७२. जिनवरस्य नयचक्रम	१०.००
२९. ४७ शक्तियाँ और ४७ नय	१५.००	७३. पश्चात्ताप खण्डकाव्य	१०.००
३०. पंडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	७४. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वंदना	२.००
३१. परमभावप्रकाशक नयचक्र	४०.००	७५. कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद	२.५०
३२. चिन्तन की गहराइयाँ	३०.००	७६. शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद	१.००
३३. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	२५.००	७७. समयसार पद्यानुवाद	३.००
३४. धर्म के दशलक्षण	२०.००	७८. योगसार पद्यानुवाद	१.००
३५. क्रमबद्धपर्याय	२०.००	७९. समयसार कलश पद्यानुवाद	३.००
३६. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (पूर्वार्द्ध)	२०.००	८०. प्रवचनसार पद्यानुवाद	३.००
३७. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (उत्तरार्द्ध)	१०.००	८१. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद	१.००
३८. तत्त्वार्थमणिप्रदीप (सम्पूर्ण)	३०.००	८२. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद	३.००
३९. बिखरे मोती	१६.००	८३. नियमसार पद्यानुवाद	२.५०
४०. सत्य की खोज	२५.००	८४. नियमसार कलश पद्यानुवाद	५.००
४१. अध्यात्म नवनीत	१५.००	८५. सिद्धभक्ति	१०.००
४२. आप कुछ भी कहो	१५.००	८६. अर्चना जेबी	१.५०
४३. आत्मा ही है शरण	१५.००	८७. कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)	५.००
४४. सुक्ति-सुधा	१८.००	८८. शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)	५.००
४५. बारह भावना : एक अनुशीलन	१६.००	८९-९०. बालबोध पाठमाला भाग २ से ३	८.००
४६. दृष्टि का विषय	१०.००	९१-९२. वीतराग विज्ञान पाठमाला १ से ३	१५.००
४७. गागर में सागर	७.००	९३-९४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ से २	१२.००
४८. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	१२.००	९५. भगवान महावीर और उनकी जन्मभूमि	३.००
४९. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१५.००	९६. समाधिमरण या सल्लेखना	५.००
५०. रक्षाबन्धन और दीपावली	५.००	९७. ये है मेरी नारियाँ	५.००

डॉ. भारिल्ल पर प्रकाशित साहित्य

१. तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (अभिनंदन ग्रंथ)	१५०.००
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व - डॉ. महावीरप्रसाद जैन	३०.००
३. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल और उनका कथा साहित्य ह्न अरुणकुमार जैन	१२.००
४. डॉ. भारिल्ल के साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन - अखिल जैन बसल	२५.००
५. गुरु की दृष्टि में शिष्य	५.००
६. मनीषियों की दृष्टि में : डॉ. भारिल्ल	५.००
७. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के साहित्य का समालोचनात्मक अनुशीलन ह्न सीमा जैन	२५.००

प्रकाशनाधीन

१. शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन ह्न नीतू चौधरी
२. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व ह्न शिखरचन्द जैन
३. धर्म के दशलक्षण एक अनुशीलन ह्न ममता गुप्ता

विनय पाठ

(दोहा)

अरहंतों को नमन कर नमूँ सिद्ध भगवान।
आचारज उवझाय अर सर्व साधु गुणखान।। १ ।।

मोक्ष मोक्ष के मार्ग में विद्यमान जो जीव।
यथायोग्य नम कर प्रभो वन्दन करूँ सदीव।। २ ।।

चौबीसों जिनराज की दिव्यध्वनि अनुसार।
ज्ञानिजनों ने जो लिखी वाणी विविधप्रकार।। ३ ।।

नय-प्रमाण से विविधविध कही तत्त्व की बात।
भविकजनों के लिये जो एकमात्र आधार।। ४ ।।

सब द्रव्यों के सभी गुण अर सामान्य-विशेष।
आज सभी को सहज ही हैं उपलब्ध अशेष।। ५ ।।

जिनवाणी उपलब्ध है उसे बतावनहार।
बहुत अधिक दुर्लभ नहीं उसके जाननहार।। ६ ।।

मोहनींद में जो पड़े नहीं कोई आधार।
साधर्मीजन कम नहीं उन्हें जगावनहार।। ७ ।।

सारा जग बेचेत है मोहनींद के द्वार।
किन्तु हमें उपलब्ध हैं मार्ग बतावनहार।। ८ ।।

महाभाग्य से प्राप्त हो देव-गुरु संयोग।
पर जिनवाणी मात की शरण सहज संयोग।। ९ ।।

उसके अध्ययन मनन से चिन्तन से निजतत्व।
जाना जाता सहज ही होता है सम्यक्त्व।। १० ।।

जिनवाणी के मर्म को अरे जानने योग्य।
ज्ञान प्रगट पर्याय में होवे सहज संयोग[१]।। ११ ।।

और कषायें मन्द हों भाव रहें निष्काम।
एक आतमा में लगे छोड़ हजारों काम[२]।। १२ ।।

देव–गुरु संयोग या जिनवाणी के योग।
तत्व श्रवण में मन लगे और न मन में रोग[३]।। १३ ।।

अरे क्षयोपशम विशुद्धि और देशना लब्धि।
जिसके ये तीनों बने उसे तत्त्व उपलब्धि।। १४ ।।

आतम में अति अधिक रुचि जब होवे सर्वांग।
विशेष तरह की योग्यता वह लब्धि प्रायोग्य।। १५ ।।

आतम का उपयोग जब आतम में रमजाय।
करणलब्धि है आतमा आतम माँहि समाय।। १६ ।।

करणलब्धि के अन्त में आतम अनुभव होय।
सम्यग्दर्शन प्राप्त हो मन रोमांचित होय।। १७ ।।

तीर्थंकर चौबीस ही हमें जगावनहार।
जागें आतम में लगें हो जावें भव पार।। १८ ।।

देव–शास्त्र–गुरु की कृपा से कटता संसार।
नमन करूँ इन सभी को भगवन् बारंबार।। १९ ।।

अरे हमारा आतमा आतम में रम जाय।
अन्य न कोई चाह मन आतम माहि समाय।। २० ।।

१. क्षयोपशम लब्धि २. विशुद्धि लब्धि ३. देशना लब्धि

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

(वीर)

अरहंतों को सब सिद्धों को आचार्यों को करूँ प्रणाम।
उपाध्याय एवं त्रिलोक के सर्व साधुओं को अभिराम।। १ ।।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरे चार मंगल हैं जग में अर्हत सिद्ध साहु मंगल।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम मंगल।। २ ।।

और चार ही लोकोत्तम अर्हत सिद्ध साहु उत्तम।
और केवली कथित जगत में होता परम धरम उत्तम।। ३ ।।

अरे चार की शरणा जाऊँ अर्हत सिद्ध साहु शरणा।
और केवली कथित लोक में जाऊँ परम धरम शरणा।। ४ ।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

मंगल विधान

(वीर)

हो अपवित्र–पवित्र और सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो।
सब पापों से छूट जाय वह नमोकार को ध्यावे जो।। १ ।।

हो अपवित्र–पवित्र अधिक क्या किसी अवस्था में भी हो।
अन्दर–बाहर से पवित्र निज परमातम को ध्यावे जो।। २ ।।

अपराजित यह मंत्र सभी विघ्नों का परमविनाशक है।
सभी मंगलों में मंगल यह पावन पहला मंगल है।। ३ ।।

सब पापों का नाशक है यह महामंत्र मंगलमय है।
सभी मंगलों में यह अद्भुत पावन पहला मंगल है।। ४ ।।

'अर्हं' ये अक्षर परमेष्ठी परमब्रह्म के वाचक हैं।
सिद्धचक्र के बीज मनोहर नमस्कार हम करते हैं।। ५ ।।

अष्टकर्म से रहित मोक्षलक्ष्मी के सुखद निकेतन हैं।
सम्यक्त्वादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध को नमते हैं।। ६ ।।

जिनवर की स्तुति करने से विघ्न विलय हो जाते हैं।
भूत डाकिनी एवं विषभय सभी विघ्न टर जाते हैं।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

(वीर)

जल चन्दन अक्षत सुमन चरु, अर दीप धूप फल द्रव्यमयी।
अर्घ्य समर्पण करता हूँ मैं श्रीजिनवर आनन्दमयी।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्रनामेभ्योर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(वीर)

अनन्तचतुष्टय पद के धारी स्याद्वाद के नायक की।
पूजन करता नमस्कार कर तीन लोक परमेश्वर की।।
मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि उनके सत्कर्मों के हेतु।
मेरे द्वारा कही जा रही यह जैनेन्द्रयज्ञविधि सेतु।। १ ।।

जिनपुंगव त्रैलोक्य गुरु की स्वस्ति हो कल्याणमयी।
जिनका रे सुस्थित स्वभाव महिमामय है कल्याणमयी।।
सहज प्रकाशमयी दृगज्योति मंगल मंगलदाता है।
स्वस्ति मंगल अद्भुत वैभव अति आनन्द प्रदाता है।। २ ।।

रे स्वभाव-परभाव सभी को करे प्रकाशित निर्मल ज्ञान।
अमृतमय वह ज्ञान मनोहर उछले अन्तर महिमावान।।
तीन लोक अर तीनकाल में विस्तृत है अति व्यापक है।
तीन लोक एवं त्रिकाल की पर्यायों का ज्ञायक है।। ३ ।।

यथायोग्य है द्रव्य शुद्धि पर भावशुद्धि पूरी चाहूँ।
अरे विविध आलंबन लेकर शुद्धभाव को अपनाऊँ।।
जो सचमुच भूतार्थ पुरुष हैं पावन हैं अतिपावन हैं।
उनकी पूजा करूँ ध्यान से जो अति ही मनभावन हैं।। ४ ।।

जिनकी केवलज्ञान ज्योति में सभी भाव भासित होते।
वे अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम परम भाव भावित होते।।
उनकी केवलज्ञान बह्नि में मैं अपने पूरे मन से।
सभी पुण्य अर्पित करता हूँ निकला चाहूँ भव वन से।। ५ ।।

स्वस्ति मंगल पाठ

(चौपाई)

स्वस्ति श्री श्री ऋषभ जिनेश, स्वस्ति करें जिनवर अजितेश।
संभव करें असंभव द्वेष, अभिनन्दन दुख हरें अशेष।। १ ।।

सुमति प्रदाता सुमति जिनेश, पद्मप्रभ जिनवर पद्मेश।
जय सुपार्श्व पारस सम जान, चन्द्रप्रभ जिन चन्द्र समान।। २ ।।

सुविधिनाथ विधिनाशनहार, शीतल शीतलता दातार।
जय श्रेयांश श्रेय करतार, वासुपूज्य शिवसुख दातार।। ३ ।।

विमल विमल जीवन दातार, श्री अनन्त आनन्द अपार।
धर्म कहें संसार असार, शान्ति अनन्त शान्ति दातार।। ४ ।।

कुन्थु कुन्थु के रक्षणहार, अरजिन आनन्द के अवतार।
जीता है मन मल्लि जिनेश, मुनिसुव्रत व्रत धरें अशेष।। ५ ।।

नमि चरणों में नमें नरेश, जीता मन्मथ नेमि जिनेश।
पारस पारस से दातार, वीर अहिंसा के अवतार।। ६ ।।

(दोहा)

चौबीसों जिनराज ही मंगल मंगल हेतु।
स्वस्ति स्वरूप विराजहीं सबको मंगल देतु।। ७ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

(हरिगीत)

ज्ञानी तपस्वी मुनिवरों को ऋद्धियाँ उपलब्ध हों।
पर ऋद्धियों की सिद्धियों पर रंच न वे मुग्ध हों।।
वे तो निरन्तर लीन रहते आतमा के ज्ञान में।
आतमा के चिन्तवन निज आतमा के ध्यान में।। १ ।।

अरे चौसठ ऋद्धियों में प्रथम केवलज्ञान है।
दूसरी है मनःपर्यय तृतीय अवधीज्ञान है।।
इत्यादि चौसठ ऋद्धियाँ सब ज्ञान का विस्तार है।
रे ज्ञान के विस्तार का न आर है न पार है।। २ ।।

अन्य लौकिक सिद्धियाँ भी ऋद्धियों से प्राप्त हो।
पर मुनिवरों को उन सभी से नहीं कोई राग हो।।
वे तो स्वयं में जम गये वे तो स्वयं में रम गये।
सारे जगत से विमुख हो सद्ज्ञान में परिणम गये।। ३ ।।

आतमा के चिन्तवन में आतमा के ज्ञान में।
वे तो निरन्तर लगे रहते आतमा के ध्यान में।।
कैसे कहें उन मुनिवरों से तुम बताओ हे प्रभो।
निज आतमा को छोड़कर हे प्रभो हम पर ध्यान दो।। ४ ।।

नहीं कोई किसी का कुछ भी करे इस लोक में।
यह जानते हैं सभी आगम ज्ञान के आलोक में।।
सब जानते हैं समझते व्यवहार में यों बह रहे।
उन ऋद्धिधारी ऋषिवरों से प्रभो फिर भी कह रहे।। ५ ।।

रे ऋद्धिधारी मुनिवरो! कल्याण सब जग का करो।
अज्ञान मोहित जगत की दुर्गति मुनिवर परिहरो।।
यह जगत मिथ्यामार्ग तज सन्मार्ग में वर्तन करे।
जिनशास्त्र का स्वाध्याय कर निजज्ञान का मार्जन करे।। ६ ।।

अन्याय और अनीति छोड़े अभक्ष्य भक्षण न करे।
न्याय एवं नीति से सन्मार्ग पर आगे बढ़े।।
होवे अहिंसक आचरण आहार और विहार में।
सावधानी रखें हम व्यवहार में व्यापार में।। ७ ।।

(दोहा)

सभी संत मंगलमयी मंगल के आधार।
मल गाले मंगल करें करें मंगलाचार।। ८ ।।
सभी ऋद्धियों के धनी सभी दिगम्बर संत।
और कछु नहिं चाहिये चाहे भव का अंत।। ९ ।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

-●-

देव–शास्त्र–गुरु–पूजन

(दोहा)

शुद्धब्रह्म परमात्मा, शब्दब्रह्म जिनवाणि।
शुद्धातम साधकदशा, नमौं जोड़ जुगपाणि।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

आशा की प्यास बुझाने को, अबतक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझ विषय–विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्यदृष्टि तेरी प्रभुवर, समता–रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल से जब जला हृदय, चन्दन ने कोई न काम किया।
तन को तो शान्त किया इसने, मन को न मगर आराम दिया।।
संसार–ताप से तप्त हृदय, सन्ताप मिटाने आया हूँ।
चरणों में चन्दन अर्पण कर, शीतलता पाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिमान किया अबतक जड़ पर, अक्षयनिधि को ना पहचाना।
मैं जड़ का हूँ जड़ मेरा है, यह सोच बना था मस्ताना।।
क्षत में विश्वास किया अबतक, अक्षत को प्रभुवर ना जाना।
अभिमान की आन मिटाने को, अक्षयनिधि तुम को पहिचाना।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दिन–रात वासना में रहकर, मेरे मन ने प्रभु सुख माना।
पुरुषत्व गँवाया पर प्रभुवर, उसके छल को ना पहिचाना।।
माया ने डाला जाल प्रथम, कामुकता ने फिर बाँध लिया।
उसका प्रमाण यह पुष्प–बाण, लाकर के प्रभुवर भेंट किया।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पर पुद्गल का भक्षण करके, यह भूख मिटानी चाही थी।
इस नागिन से बचने को प्रभु, हर चीज बनाकर खाई थी।।
मिष्टान्न अनेक बनाये थे, दिन–रात भखे न मिटी प्रभुवर।
अब संयम–भाव जगाने को, लाया हूँ ये सब थाली भर।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पहले अज्ञान मिटाने को, दीपक था जग में उजियाला।
उससे न हुआ कुछ तब युग ने, बिजली का बल्ब जला डाला।।
प्रभु भेद–ज्ञान की आँख न थी, क्या कर सकती थी यह ज्वाला।
यह ज्ञान है कि अज्ञान कहो, तुमको भी दीप दिखा डाला।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ–कर्म कमाऊँ सुख होगा, अबतक मैंने यह माना था।
पाप कर्म को त्याग पुण्य को, चाह रहा अपनाना था।।
किन्तु समझ कर शत्रु कर्म को, आज जलाने आया हूँ।
लेकर दशांग यह धूप, कर्म की धूम उड़ाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्योः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निश–दिन मस्त रहा।
उनके संग्रह में हे प्रभुवर! मैं व्यस्त–त्रस्त–अभ्यस्त रहा।।
शुद्धात्मप्रभा जो अनुपम फल, मैं उसे खोजने आया हूँ।
प्रभु सरस सुवासित ये जड़फल, मैं तुम्हें चढ़ाने लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव–शास्त्र–गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

समयसार जिनदेव हैं, जिन-प्रवचन जिनवाणि।
नियमसार निर्ग्रन्थ गुरु, करें कर्म की हानि।।

(वीरछन्द)

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, तुमको ना अबतक पहिचाना।
अतएव पड़ रहे हैं प्रभुवर, चौरासी के चक्कर खाना।।
करुणानिधि तुमको समझ नाथ, भगवान भरोसे पड़ा रहा।
भरपूर सुखी कर दोगे तुम, यह सोचे सन्मुख खड़ा रहा।।
तुम वीतराग हो लीन स्वयं में, कभी न मैंने यह जाना।
तुम हो निरीह जग से कृत-कृत, इतना ना मैंने पहिचाना।।
प्रभु वीतराग की वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है, केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका, परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक, सत् का न प्रभो सम्मान किया।।
भगवान तुम्हारी वाणी में, जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
स्याद्वाद-नय, अनेकान्त-मय, समयसार समझाया है।।
उस पर तो ध्यान दिया न प्रभो, विकथा में समय गँवाया है।
शुद्धात्म-रुचि न हुई मन में, ना मन को उधर लगाया है।।

मैं समझ न पाया था अबतक, जिनवाणी किसको कहते हैं।
प्रभु वीतराग की वाणी में, कैसे क्या तत्त्व निकलते हैं।।
राग धर्ममय धर्म रागमय, अबतक ऐसा जाना था।
शुभ-कर्म कमाते सुख होगा, बस अबतक ऐसा माना था।।
पर आज समझ में आया है, कि वीतरागता धर्म अहा।
राग-भाव में धर्म मानना, जिनमत में मिथ्यात्व कहा।।
वीतरागता की पोषक ही, जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर, हम को जो दिखलाती है।।
उस वाणी के अन्तर्तम को, जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यों के चरणों में, मस्तक बस हमें झुकाना है।।
दिन-रात आत्मा का चिन्तन, मृदु सम्भाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से भी, प्रकट हो रहा अन्तर्मन।।
निर्ग्रन्थ दिगम्बर सद्ज्ञानी, स्वातम में सदा विचरते जो।
ज्ञानी-ध्यानी-समरससानी, द्वादश विधि तप नित करते जो।।
चलते-फिरते सिद्धों-से गुरु-चरणों में शीश झुकाते हैं।
हम चलें आपके कदमों पर, नित यही भावना भाते हैं।।
हो नमस्कार शुद्धातम को, हो नमस्कार जिनवर वाणी।
हो नमस्कार उन गुरुओं को, जिनकी चर्या समरससानी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

(दोहा)

दर्शन दाता देव हैं, आगम सम्यग्ज्ञान।
गुरु चारित्र की खानि हैं, मैं वंदौं धरि ध्यान।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

-●-

चौबीस तीर्थंकर विधान

मंगलाचरण

(दोहा)

आदिनाथ से वीर तक चौबीसों जिनराज।
वीतराग-सर्वज्ञ जिन हितकर सर्व समाज।। १ ।।
उनकी वाणी को कहें जिनवाणी सब लोग।
सत् गुरु उसका नित करें जीवन माँहि प्रयोग।। २ ।।
देव-शास्त्र-गुरु को कहा जैनधर्म का मूल।
उनके ही परसाद से रहे न कोई भूल।। ३ ।।

(हरिगीतिका)

चौबीस तीर्थंकर प्रभो ऋषभादि से महावीर तक।
अवसर्पिणी के काल में रे हुये हैं जो अभी तक।।
उन सभी की दिव्यध्वनि में तत्त्व समझाया गया।
वह तत्त्व सब आसन्नभव्यों की समझ में आ गया।। ४ ।।

वह तत्त्व हमको अरे रे रे आज भी उपलब्ध है।
सद्ज्ञानियों की कृपा से जिनशास्त्र भी उपलब्ध हैं।।
और उनका गहन मंथन आज हम सब कर रहे।
आतमा की ओर सत्वर गति से नित बढ़ रहे।। ५ ।।

रे रे जिनेश्वर देव तेरे मार्ग पर हम बढ़ रहे।
और शिवपथ सीढ़ियों पर हम निरन्तर चढ़ रहे।।
आप थे कल जहाँ पर हम आज उस थल पर खड़े।
पर आज हो तुम जिस जगह हम कल वहाँ होंगे खड़े ।। ६ ।।

अरे रे जिनदेव हम सब गीत तेरे गा रहे।
आप जिस मग पर चले हम उसी मग पर आ रहे।।
वह आतमा की साधना का मार्ग हमने पा लिया।
और अन्तर्भाव से हमने उसे अपना लिया।। ७ ।।

अरे अपने आतमा में अपनपन सम्यक्त्व है।
और उसमें अपनपन का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।।
अर आतमा की लीनता ही ध्यान है चारित्र है।
यह आतमा निजभाव से ही स्वयं परम पवित्र है।। ८ ।।

इस आतमा की साधना आराधना ही धर्म है।
अरे निज में रमण ही आराधना का मर्म है।।
हो निर्विकल्पक जानना ही आतमा का कर्म है।
जानना बस जानना ही आतमा का धर्म है।। ९ ।।

(दोहा)

अधिक कहें क्या लोक में एक जानना धर्म।
सदा जानते रहो तुम यही धर्म का मर्म।। १० ।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

-●-

चौबीस तीर्थंकर पूजन

(स्थापना)

(हरिगीतिका)

अरे तीर्थंकर प्रकृति का परम पावन योग है।
जगत हितकर दिव्यध्वनि का योग है संयोग है।।
चौबीस तीर्थंकर हुये संपूर्ण चौथे काल में।
दिव्यध्वनि जमती रही रे भव्यजन के भाल में।। १।।

आज भी वह प्राप्त है जिनमार्ग के आलोक में।
निज हृदय में कर थापना सब लाभ ले इस लोक में।।
वे सभी जिनवरदेव अब आवें हमारे पास में।
उन सभी को थापित करें हम स्वयं अपने आप में।। २।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ, ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह!!! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

(वीर)

जल

यह जल उज्ज्वल पावन शीतल अर स्वभाव से है अम्लान।
चरण कमल में अर्पित करके हो जायें हम आप समान।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन

शीतल चन्दन ताप निकन्दन सम्यक्दर्शन सहित विवेक।
चरणों में अर्पित करते हैं भव आतप के नाशन हेत।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत

आतम सम अखण्ड अविनाशी अक्षत अर्पित करते हैं।
निज आतम को प्राप्त करें हम यही कामना करते हैं।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुष्प

कल्पद्रुम के पुष्प अनूपम अर्पित करते चरणों में।
परमशुद्धता प्रगटित होवे हम सबके आचरणों में।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य

क्षुधारोग नाशक मधुरिम चरु अर्पण करते प्रभुवर हम।
क्षुधा शान्ति के चाहक हैं हम अन्य वस्तु न चाहें हम।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप

स्वपरप्रकाशक मणिमयदीपक अर्पण करके हे जिननाथ!
अंतरंग के घोर अंधेरे से छुटकारा पायें नाथ।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूप

अरे सुगन्धित प्रासुक ताजी धूप मनोहर चरणों में।
अर्पित कर हम संयम धारें नित अपने आचरणों में।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल

पुण्य-पाप फल अर्पित कर हम परमशुद्धभाव धारें।
और मोक्ष फल पाने को हम निज आतम को अपना लें।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य

जीवन में अभिलाषायें तज शुद्धभाव धारण करलें।
अरे अर्घ्य यह अर्पण करके हम अनर्घ्यपद प्राप्त करें।।
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक श्री तीर्थंकरदेव महान।
अति विनम्र हो हम करते हैं उनकी महिमा का गुणगान।।

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर अर्घ्यावली

(दोहा)

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ जिन, हितकर सर्व समाज।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

१. तीर्थंकर आदिनाथ

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया।।
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरऋषभनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२. तीर्थंकर अजितनाथ

जिन अजित जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर।।
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरअजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

३. तीर्थंकर संभवनाथ

सम्भव असम्भव मान मार्दव धर्ममय शुद्धातमा।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमातमा।।
छोटे-बड़े की भावना ही मान का आधार है।
निज आतमा की साधना ही साधना का सार है।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरसंभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

४. तीर्थंकर अभिनन्दननाथ

निज आतमा को आतमा ही जानना है सरलता।
निज आतमा की साधना आराधना है सरलता।।
वैराग्य-जननी नन्दिनी अभिनन्दिनी है सरलता।
है साधकों की संगिनी आनन्द-जननी सरलता।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरअभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

५. तीर्थंकर सुमतिनाथ

हे सर्वदर्शी सुमति जिन! आनन्द के रसकन्द हो।
हो शक्तियों के संग्रहालय ज्ञान के घनपिण्ड हो।।
निर्लोभ हो निर्दोष हो निष्क्रोध हो निष्काम हो।
हो परम-पावन पतित-पावन शौचमय सुखधाम हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरसुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

६. तीर्थंकर पद्मप्रभ

मानता आनन्द सब जग हास में परिहास में।
पर आपने निर्मद किया परिहास को परिहास में।।
परिहास भी है परिग्रह जग को बताया आपने।
हे पद्मप्रभ परमातमा! पावन किया जग आपने।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

७. तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ

पारस सुपारस है वही पारस करे जो लोह को।
वह आतमा ही है सुपारस जो स्वयं निर्मोह हो।।
रति-राग वर्जित आतमा ही लोक में आराध्य है।
निज आतमा का ध्यान ही बस साधना है साध्य है।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

८. तीर्थंकर चन्द्रप्रभ

रति-अरतिहर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूरव चन्द्र हो।
निश्शेष हो निर्दोष हो निर्विघ्न हो निष्कंप हो।।
निकलंक हो अकलंक हो निष्ताप हो निष्पाप हो।
यदि हैं अमावस अज्ञजन तो पूर्णमासी आप हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

९. तीर्थंकर सुविधिनाथ (पुष्पदन्त)

विरहित विविधविधि सुविधि जिन निज आतमा में लीन हो।
हो सर्वगुण सम्पन्न जिन सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो।।
शिवमग बतावनहार हो शत इन्द्रकरि अभिवन्द्य हो।
दुख-शोकहर भ्रम-रोगहर सन्तोषकर सानन्द हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरसुविधिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१०. तीर्थंकर शीतलनाथ

आपका गुणगान जो जन करें नित अनुराग से।
सब भय भयंकर स्वयं भयकरि भाग जावें भाग से।।
तुम हो स्वयंभू नाथ निर्भय जगत को निर्भय किया।
हो स्वयं शीतल मलयगिरि से जगत को शीतल किया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरशीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

११. तीर्थंकर श्रेयांसनाथ

नरतन विदारन मरन–मारन मलिन भाव विलोक के।
दुर्गन्धमय मलमूत्रमय नरकादि थल अवलोक के।।
जिनके न उपजे जुगुप्सा समभाव महल–मसान में।
वे श्रेय श्रेयस्कर शिरि (श्री) श्रेयांस विचरें ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१२. तीर्थंकर वासूपूज्य

निज आतमा के भान बिन सुख मानकर रति–राग में।
सारा जगत नित जल रहा है वासना की आग में।।
तुम वेद–विरहित वेदविद् जिन वासना से दूर हो।
वसुपूज्यसुत बस आप ही आनन्द से भरपूर हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरवासूपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१३. तीर्थंकर विमलनाथ

बस आतमा ही बस रहा जिनके विमल श्रद्धान में।
निज आतमा बस एक ही नित रहे जिनके ध्यान में।।
सब द्रव्य–गुण–पर्याय जिनके नित्य झलकें ज्ञान में।
वे वेद विरहित विमल जिन विचरें हमारे ध्यान में।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१४. तीर्थंकर अनन्तनाथ

तुम हो अनादि अनन्त जिन तुम ही अखण्डानन्त हो।
तुम वेद विरहित वेदविद् शिवकामिनी के कन्त हो।।
तुम सन्त हो भगवन्त हो तुम भवजलधि के अन्त हो।
तुम में अनन्तानन्त गुण तुम ही अनन्तानन्त हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरअनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१५. तीर्थंकर धर्मनाथ

हे धर्म जिन सद्धर्ममय सत् धर्म के आधार हो।
भवभूमि का परित्याग कर जिन भवजलधि के पार हो।।
आराधना आराधकर आराधना के सार हो।
धरमातमा परमातमा तुम धर्म के अवतार हो।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१६. तीर्थंकर शान्तिनाथ

मोहक महल मणिमाल मण्डित सम्पदा षट्खण्ड की।
हे शान्ति जिन! तृण–सम तजी ली शरण एक अखण्ड की।।
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१७. तीर्थंकर कुन्थुनाथ

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन सुमन–समान ही।
धन–धान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर–समान थी।।
थीं उर्वशी सी अंगनाएँ संगिनी संसार की।
श्री कुन्थु जिन तृण–सम तजीं ली राह भवदधि पार की।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१८. तीर्थंकर अरनाथ

हे चक्रधर! जग जीतकर षट्खण्ड को निज वश किया।
पर आतमा निज नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया।।
हे ज्ञानघन अरनाथ जिन! धन–धान्य को ठुकरा दिया।
विज्ञानघन आनन्दघन निज आतमा को पा लिया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरअरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

१९. तीर्थंकर मल्लिनाथ

हे दुपद-त्यागी मल्लिजिन! मन-मल्ल का मर्दन किया।
एकान्त पीड़ित जगत को अनेकान्त का दर्शन दिया।।
तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन।
हे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी! नमन हो शत-शत नमन।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२०. तीर्थंकर मुनिसुव्रत

मुनिमनहरण श्री मुनीसुव्रत चतुष्पद परित्याग कर।
निजपद विहारी हो गये तुम अपद पद परिहार कर।।
पाया परमपद आपने निज आतमा पहिचान कर।
निज आतमा को जानकर निज आतमा का ध्यान धर।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२१. तीर्थंकर नमिनाथ

निजपद विहारी धरमधारी धरममय धरमातमा।
निज आतमा को साध पाया परमपद परमातमा।।
हे यान-त्यागी नमी! तेरी शरण में मम आतमा।
तूने बताया जगत को सब आतमा परमातमा।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२२. तीर्थंकर नेमिनाथ

आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन।
सद्बोध पाया आपने जग को बताया नेमि जिन।।
स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन।
परद्रव्य से है पृथक् पर हर द्रव्य अपने में मगन।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२३. तीर्थंकर पार्श्वनाथ

तुम हो अचेलक पार्श्वप्रभु ! वस्त्रादि सब परित्याग कर।
तुम वीतरागी हो गये रागादिभाव निवार कर।।
तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्ता न धर्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

२४. तीर्थंकर महावीर

हे पाणिपात्री वीर जिन! जग को बताया आपने।
जग-जाल में अबतक फँसाया पुण्य एवं पाप ने।।
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का।
यह धर्म का है मरम यह विस्फोट आतम क्रान्ति का।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

पुण्य-पाप से पार, निज आतम का धर्म है।
महिमा अपरम्पार, परम अहिंसा है यही।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

-●-

जयमाला

(दोहा)

नमन करें कर जोड़कर अपने हित के काज।
तीर्थंकर वर्तमान के चौबीसों जिनराज ।। १ ।।

(हरिगीतिका)

अपनत्व अपने में तथा निज आतमा में लीन हो।
हो वीतरागी पूर्णतः सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो।।
तुममें अनन्तानन्त गुण एवं अनादि-अनन्त हो।
श्री ऋषभ से वीरान्त तक चौबीस तीर्थंकर प्रभो।। २।।

इस जगत को शिवमग बताया दिव्यध्वनि से आपने।
सन्मार्ग पर चलना सिखाया भविकजन को आपने।।
जिन तीर्थ का वर्तन प्रवर्तन हुआ जिनवर आपसे।
रे चरणरज पा आपकी भवि पार हों संसार से।। ३।।

जगत की प्रत्येक वस्तु स्वयं में परिपूर्ण है।
नहीं कुछ भी कमी अपने आपमें संपूर्ण है।।
अनित्य है पर्याय से पर द्रव्य-गुण से नित्य है।
बदलती है नित्य[१] किन्तु बदलकर भी नित्य[२] है।। ४।।

यह एक क्षण भी नहीं बदले कभी हो सकता नहीं।
बदल जावे पूर्णतः यह कभी हो सकता नहीं।।
नित्यता की भाँति इसका बदलना भी नित्य है।
अनित्य है अर नित्य है अर स्वयं नित्यानित्य है।। ५।।

इस जगत के परिणमन का कर्त्ता न धर्त्ता कोई है।
इस जगत में सुख-दुःख का न दान-दाता कोई है।।
सब स्वयं में ही लीन हैं सब स्वयं के आधार हैं।
सब जीव अपने परिणमन के स्वयं जिम्मेवार हैं।। ६।।

१. प्रतिसमय २. सदा कायम

जीवन-मरण अर दुःख सुख सब स्वयं से होते सदा।
अर करम के उदय उनमें निमित्त होते हैं सदा।।
अन्य कोई जीव तो उनमें करे कुछ भी नहीं।
हम रोष करते रहे जबकि करें वे कुछ भी नहीं।। ७।।

अरे पर में एकता ममता भयंकर भूल है।
और करना भोगना पर को भयंकर शूल है।।
मिथ्यात्व मिथ्याज्ञान एवं आचरण प्रतिकूल है।
इन सभी की निवृत्ति ही भवोदधि का कूल है।। ८।।

पाप के सम पुण्य भी तो चतुर्गति का मूल है।
पुण्य को सुखकर समझना भी भयंकर भूल है।।
पाप के सम पुण्य भी तो बंध के अनुकूल है।
अरे संवर निर्जरा अर मोक्ष के प्रतिकूल है।। ९।।

बंध भी पर्याय है अर मोक्ष भी पर्याय है।
पर त्रिकाली आतमा पर्याय से भी पार है।।
वह त्रिकाली आतमा मैं भवोदधि से पार हूँ।
मैं स्वयं ही अरे जिनवर स्वयं का आधार हूँ।। १०।।

ऋषभ से वीरान्त तक सबने बताया जगत को।
जगत से अद्भुत निराला भिन्न जानों स्वयं को।।
और इकदम लीन कर दो स्वयं में ही स्वयं को।
एवं सभी संसार से तुम भिन्न कर दो स्वयं को।। ११ ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकर जिनेन्द्रेभ्यो महार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

जिनवर का उपदेश यह एकमात्र है सार।
धारे जो उनको करे भव समुद्र से पार।। १२।।

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

महाऽर्घ्य

(अडिल्ल[१])

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से।।
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है।। १ ।।
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मेदाचल गिरनारी चम्पापुरी।।
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने।। २ ।।
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने।।
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
और भावना भाता अति उत्साह से।। ३ ।।
इन सबकी वंदना करूँ अति चाव से।
और भावना बारह भाऊँ भाव से।।
धर्मध्यान अर शुक्लध्यान का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है।। ४ ।।
इन सबकी भक्ति पूजन आराधना।
और आतमा में तन्मय हो साधना।।
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है।। ५ ।।

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो होय विभाव अभाव।। ६।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री सम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महार्घ्यं ....

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा? .... की धुन पर गायें।

शान्ति पाठ

(हरिगीत)

हे शान्ति के सागर जिनेश्वर! शान्ति के ही रूप हो।
नाशाग्रदृष्टि शान्त मुद्रा स्वयं शान्तिस्वरूप हो।।
सारे जगत में शान्ति हो सारा जगत यह चाहता।
किन्तु सारे जगत को अपना बनाना चाहता।। १ ।।

जबकि इक अणुमात्र भी तो जगत में इसका नहीं।
अधिक क्या अणुमात्र को अपना बना सकता नहीं।।
यह बात शाश्वत सत्य है कोई किसी का रंच भी।
अच्छा-बुरा या अन्य कुछ भी कभी कर सकता नहीं।। २ ।।

मारना अर बचाना या दुःख-सुख का दान भी।
कोई किसी का ना करे आदान और प्रदान भी।।
यह बात केवलि ने कही जिनशास्त्र में उल्लेख है।
जैन शासन में समझ लो यह छठी का लेख है।। ३ ।।

शान्ति और अशान्ति ये तो आतमा के भाव हैं।
कोई किसी के क्यों करे ये तो स्वयं के भाव हैं।।
रे स्वयं मिथ्या मान्यता को बुद्धिपूर्वक छोड़ दें।
एवं स्वयं ही स्वयं में निज आतमा को जोड़ दें।। ४ ।।

शान्ति होती प्राप्त केवल आतमा के ज्ञान से।
आतमा के ज्ञान से अर आतमा के ध्यान से।।
यह ही परमसत्यार्थ है यह ही परम भूतार्थ है।
और सब व्यवहार है बस एक यह परमार्थ है।। ५ ।।

व्यवहार से हम भावना भाते सुखी संसार हो।
सुख-शान्ति चारों ओर हो ना समृद्धि का पार हो।।
अनुकूलता हो सब तरफ न आर हो न पार हो।
अधिक क्या अब हम कहें बस सब सुखी संसार हो।। ६ ।।

(दोहा)

सभी जीव इस लोक के सुखी रहें सर्वत्र।
मौसम की अनुकूलता बनी रहे सर्वत्र।। ७ ।।

विसर्जन पाठ

(दोहा)

जो कुछ जैसी बन पड़ी अपनी शक्ति प्रमाण।
हमने पूजन की प्रभो अपनी भक्ति प्रमाण।। १ ।।

हमने जाना जो प्रभो जिनवाणी का मर्म।
उसके ही अनुसार सब यह व्यवहारिक धर्म।। २ ।।

इसमें जो कुछ रहीं हों कमियाँ विविध प्रकार।
विधि के जाननहार जन इसमें करें सुधार।। ३ ।।

-●-

प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।

दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[१]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।

वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।

जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।

१. जिसमें कोई सन्देह या भ्रम न हो।

यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।

अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।
स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।

प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।
प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।

छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।

जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह?।। १० ।।

बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।

जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।

क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।

जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।
जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।

भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

-●ह्न

प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

भक्तिभाव से हम करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
अरे विकारी भाव का हो जावे प्रक्षाल।। १ ।।
दिन का शुभ आरंभ हो चित्त रहे निर्भ्रान्त[1]।
प्रतिमा के प्रक्षाल से मन हो जावे शान्त।। २ ।।

(हरिगीतिका)

यद्यपि इस काल में अरहंत जिन उपलब्ध ना।
किन्तु हमारे भाग्य से जिनबिंब तो उपलब्ध हैं।।
जिनबिंब का प्रक्षाल पूजन और दर्शन भाव से।
जो भाग्यशाली करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।। ३ ।।
वे भाग्यशाली भव्य निज हित कार्य में नित रत रहें।
आपके गुणगान वे नित निरन्तर करते रहें।।
निज आतमा को जानकर वे शीघ्र ही भव पार हों।
निज आतमा का ध्यान धर वे भवजलधि से पार हों।। ४ ।।
जिसतरह समव-शरण में अरहंत जिन विद्यमान हैं।
और उनका इस जगत में उच्चतम स्थान है।।
व्यवहार होता जिसतरह का अरे उनके सामने।
बस उसतरह की विनय हो जिनमूर्तियों के सामने।। ५ ।।
यदि मूर्तियाँ हों प्रतिष्ठित स्थापना निक्षेप से।
अरहंत सम ही पूज्य हैं जिनमार्ग में व्यवहार से।।
अरे कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिंब जितने लोक में।
वे पूज्य हैं शत इन्द्र कर जिनशास्त्र के आलोक में।। ६ ।।
अति विनयपूर्वक बिंब का प्रक्षाल होना चाहिये।
अर दिवस में प्रत्येक दिन इकबार होना चाहिये।।
स्वस्थ तन-मन स्वच्छ पट अर सावधानी पूर्वक।
सद्भाव से ही पुरुष को प्रक्षाल करना चाहिये।। ७ ।।
प्रत्येक नर-नारी अरे पूजन करे प्रत्येक दिन।
प्रक्षाल तो बस एक जन इकबार ही दिन में करे।।
प्रक्षाल पूजन अंग ना प्रत्येक को अनिवार्य ना।

प्रक्षाल तो इक बिंब का इक बार होना चाहिये।। ८ ।।
छवि वीतरागी शान्त मुद्रा कही है जिनदेव की।
जिनमूर्ति की भी शान्त मुद्रा वीतरागी छवि कही।।
'जिनमूर्तियाँ हों मुस्कुराती' - कभी हो सकता नहीं।
और हंसना वीतरागी भाव हो सकता नहीं।। ९ ।।
जब वीतरागी जिनवरों का न्हवन हो सकता नहीं।
एवं दिगम्बर मुनिवरों का न्हवन हो सकता नहीं।।
जब मुनिवरों के मूलगुण में एक गुण अस्नान है।
तब प्रतिष्ठित मूर्तियों का न्हवन होवे किस तरह?।। १० ।।
बस इसलिये जिनमूर्तियों को स्वच्छ रखने के लिये।
और अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये।।
अरे प्रासुक नीर से प्रक्षाल करना चाहिये।
न्हवन ना अभिषेक ना प्रक्षाल होना चाहिये।। ११ ।।
जिनबिंब का स्पर्श महिला वर्ग कर सकता नहीं।
जिनबिंब का प्रक्षाल महिला वर्ग कर सकता नहीं।।
दिगम्बर जिनबिंब से सम्पूर्ण महिला वर्ग को।
एक सीमा तक सुनिश्चित दूर रहना चाहिये।। १२ ।।
क्योंकि ये जिनबिंब जिनवरदेव के प्रतिबिंब हैं।
वीतरागी सर्वज्ञानी देव के ही बिंब हैं।।
उन बिंब का जिनबिंब का अति हर्ष से उल्लास से।
प्रक्षाल सब जन कर रहे अत्यन्त निर्मल भाव से।। १३ ।।
जिनबिंब का प्रक्षाल जो जन करें निर्मलभाव से।
और पूजन करें प्रतिदिन भाव से अति चाव से।।
जिन शास्त्र का स्वाध्याय एवं रहें संयमभाव से।
वे भव्यजन भवपार होंगे स्वयं के आधार से।। १४ ।।

(दोहा)

महाभाग्य हमने किया जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
चरणों में जिनबिंब के सदा नवावें भाल।। १५ ।।
भक्तिभाव से जो करें जिन प्रतिमा प्रक्षाल।
निज आतम का ध्यान धर वे होवें भव पार।। १६ ।।

-●-